शोधामृत
(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-4.0
Vol.-3; issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No- 332-336
©2026 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Author's :

1. वेदप्रकाश भारती
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ल. ना. मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा.

2. डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद सुमन
निर्देशक, सह प्राचार्य, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा.

Corresponding Author :

वेदप्रकाश भारती
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ल. ना. मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा.

चौथीराम यादव की आलोचना दृष्टि और दलित विमर्श

सारांश: डॉ. चौथीराम यादव हिन्दी आलोचना में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उन्होंने दलित साहित्य और दलित विमर्श को केवल साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय समाज की ऐतिहासिक असमानताओं, वर्णव्यवस्था और सत्ता-संरचनाओं के विरुद्ध एक वैचारिक हस्तक्षेप के रूप में देखा है। उनकी दृष्टि में दलित विमर्श सामाजिक न्याय, समानता और मनुष्य की गरिमा की पुनर्स्थापना का आंदोलन है। वे मानते हैं कि दलित साहित्य का मूल उद्देश्य केवल पीड़ा का वर्णन करना नहीं, बल्कि शोषणकारी व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोध और परिवर्तन की चेतना का निर्माण करना है।

भारतीय समाज में सदियों से जाति-व्यवस्था विद्यमान रही है। इस वर्ण-व्यवस्था में सवर्णों ने स्वयं को श्रेष्ठ तथा अन्य वर्गों को निकृष्ट माना है। इस व्यवस्था का सबसे अधिक अमानवीय व्यवहार यदि किसी के साथ हुआ है, तो वह स्त्रियों और दलितों के साथ हुआ है। सामाजिक विषमता का सर्वाधिक प्रभाव इन्हीं दोनों वर्गों पर पड़ा है। एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से श्रेष्ठ सिद्ध करने तथा स्त्री पर पुरुष की श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए इन विषमताओं का निर्माण किया गया। वर्ण-व्यवस्था को वैध ठहराने के लिए अनेक ग्रंथ, धर्मशास्त्र और स्मृतियाँ लिखी गईं। समकालीन दौर में दलित और स्त्री अपने अस्तित्व की पहचान करते हुए एक नए विमर्श के रूप में उभरे हैं। दलित साहित्य का संबंध चेतना से है, वह चेतना, जो नकार और विद्रोह से निर्मित हुई है तथा जिसके केंद्र में आंबेडकरवाद स्थित है।

बीज शब्द : दलित विमर्श, सामाजिक न्याय, वर्णव्यवस्था, प्रतिरोध, दलित साहित्य, समाज।

भारतीय समाज में विद्यमान सामाजिक और आर्थिक अंतर्विरोधों के परिणामस्वरूप ही दलित विमर्श का उदय हुआ। सदियों से चली आ रही जाति-व्यवस्था को ध्वस्त कर अपने अस्तित्व, सम्मान और अधिकारों की स्थापना के लिए दलित आंदोलन का आरंभ हुआ। इस दृष्टि से दलित आंदोलन मूलतः जाति-व्यवस्था के विरुद्ध एक परिवर्तनकारी आंदोलन है। रक्त और गोत्र की शुद्धता के नाम पर भाषा, साहित्य और संस्कृति तक में शुद्धता की तलाश करने वाली ब्राह्मणवादी तथा मनुवादी विचारधारा स्वयं को समाज में श्रेष्ठ सिद्ध

करती रही है। वस्तुतः यह शुद्धतावादी और रूढ़िवादी परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है। यदि ब्राह्मणवाद के विरोध की परंपरा पर दृष्टि डालें, तो इसका सशक्त प्रतिरोध गौतम बुद्ध के समय से ही दिखाई देता है। गौतम बुद्ध ने जाति-व्यवस्था के विरुद्ध व्यापक सामाजिक आंदोलन का नेतृत्व किया। इसके बाद भक्ति आंदोलन के दौरान कबीर, रैदास आदि संतों ने जातिगत ऊँच-नीच का विरोध करते हुए समानता और मानवता का संदेश दिया। आधुनिक काल में दलित आंदोलन के केंद्र में महात्मा ज्योतिराव फुले और डॉ. भीमराव आंबेडकर के विचार रहे, जिन्होंने जाति-विरोधी संघर्ष को वैचारिक और संगठित आधार प्रदान किया। इन तीनों सामाजिक क्रांतियों की ऐतिहासिक भूमिका को रेखांकित करते हुए आलोचक डॉ. चौथीराम यादव एक साक्षात्कार में कहते हैं- "हमारे देश की सबसे बड़ी सामाजिक क्रांति-एक तो बुद्ध की सामाजिक क्रांति, दूसरे भक्ति आंदोलन की सामाजिक क्रांति और तीसरे दलित आंदोलन की सामाजिक क्रांति और तीनों परिवर्तनगामी आंदोलन है और तीनों का एक स्वर है जाति-व्यवस्था का विरोध करना, वर्ण-व्यवस्था पर आधारित जो ब्राह्मणवादी व्यवस्था है। उस वर्ण व्यवस्था का विरोध करना एवं समता मूलक समाज का निर्माण करना।"[1]

आलोचक चौथीराम यादव का मानना है कि विमर्श समकालीन दौर में शुरू हुआ है। उसके कारण पहचानते हुए एक साक्षात्कार में वो कहते हैं- "सामाजिक, आर्थिक व साहित्यिक प्रवृत्तियां या विमर्श उठ खड़े हो गए हैं, इसका मुख्य कारण हैं-सामाजिक-विषमता। सामाजिक-विषमता के खिलाफ जो सामाजिक-न्याय का आंदोलन है, वे सकारात्मक तो हैं ही, क्योंकि उनमें माना गया कि ये हाशिये के समाज की आवाजें हैं। इसके दो मूल कारण थे- कास्ट (जाति) और जेंडर (लिंग), जिनके आधार पर समाज में सारी विषमताएं पैदा की गई हैं। इस सामाजिक विषमता के मूल में यही दोनों जाति-व्यवस्था व वर्ण-व्यवस्था हैं।"[2]

दलित विमर्श का उद्भव इसलिए हुआ क्योंकि भारतीय समाज-व्यवस्था ने उच्च वर्णों को सभी प्रकार के अधिकार, सुविधाएँ और विशेषाधिकार प्रदान किए, जबकि निम्न वर्णों तथा वंचित समुदायों को अधिकारहीन बनाए रखा। उन्हें केवल सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों से ही वंचित नहीं किया गया, बल्कि उनकी मानवीय गरिमा और मनुष्य होने के अधिकार तक का निषेध किया गया। सदियों तक उनके साथ अन्याय, अत्याचार और भेदभाव का व्यवहार किया जाता रहा। इसी अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध विरोध, प्रतिरोध और समानता की चेतना ही दलित विमर्श का मूल केंद्र है। दलित चिंतक बजरंग बिहारी तिवारी दलित विमर्श के उद्भव और विकास के संबंध में लिखते हैं- "दलित विमर्श उस समाज-व्यवस्था की देन है जिसमें जाति और वर्ण के आधार मनुष्य-मनुष्य में अंतर किया जाता है और समाज के एक बड़े तबके को अछूत मान लिया जाता है। इस समाज-व्यवस्था ने 'उच्च वर्ण' को सभी संभव सुविधाएं व अधिकार प्रदान किए तथा निम्न वर्ण व वर्णेतर समुदाय को अधिकारहीन रखकर सेवा तक सीमित कर दिया। अन्याय और अत्याचार का यह सिलसिला शताब्दियों तक जारी रहा। इस अमानुषिकता का विरोध भी लगातार होता रहा। कभी संगठित रूप में तो कभी छिटपुट तरीके से। आधुनिक काल में आकर इस विरोध ने एक नई शक्ल अख्तियार की, अपने लिए नया नाम चुना और व्यवस्था परिवर्तन की बात की। प्रतिरोधी जमात ने शूद्र, अन्त्यज, अछूत, पंचमवर्ण, हरिजन आदि शब्दों को नकार कर 'दलित' शब्द अपनाया और तथाकथित उच्च जाति के लोगों से रियायत माँगने के स्थान पर समाज के आमूल परिवर्तन की मांग उठायी। यह माँग राजनीति में उठी और साहित्य में भी।"[3]

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित कौन है और दलित विमर्श के आधारभूत के बारे में लिखते हैं- "दलित कौन? यह दलित-विमर्श की आधारभूत बहस है। शब्दकोशीय अर्थ के अनुसार दलित शब्द का आशय है- जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनष्ट, मर्दित, पस्तहिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि।"[4] और कंवल भारती दलित साहित्य के अभिप्राय के बारे में बताते हैं- "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और जिजीविषा का

साहित्य है। इसीलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है"[5]

मार्क्सवादी आलोचक डॉ. नामवर सिंह एक साक्षात्कार में दलित जीवन, उनकी अभिव्यक्ति तथा उनके सामाजिक उद्धार के संदर्भ में डॉ. भीमराव आंबेडकर के ऐतिहासिक योगदान की चर्चा करते हैं। इसी संदर्भ में नामवर सिंह डॉ. आंबेडकर के योगदान पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं- "दुख, पीड़ा और अपमान से भरी ग़रीबी के साथ तिरस्कार की कोई सीमा नहीं रही। इतिहास गवाह है कि सवर्णों के दंभ और अन्याय के कारण ही अनेक शताब्दियों तक उन्होंने दमन और घृणा का जहर पिया। 'दलित' होने की पीड़ा उन्होंने स्वयं भोगी है तो उनकी अभिव्यक्ति में घृणा नहीं तो क्या प्रेम होगा? कड़वाहट और कटुता जितनी नज़र आती है, उससे कहीं अधिक दलित वर्ग ने अपने-अपने अनुभव में भोगी है। इसके बाद भी मुझे लगता है, यह घृणा किसी एक जाति के ख़िलाफ़ न होकर वर्ण व्यवस्था के ख़िलाफ़ है। बाबा साहेब अंबेडकर कहते थे, हमारा दलित साहित्य केवल आर्थिक और सामाजिक लड़ाई नहीं है, बल्कि नैतिक और सांस्कृतिक भी है। उनके विचारों ने दलित चेतना का दीप जला दिया।"[6] और हरिनारायण ठाकुर दलित साहित्य का स्वरूप और दलित साहित्य के प्रेरक के बारे में लिखते हैं- "दलित साहित्य रूपवादी-कलावादी साहित्य नहीं है। उसकी संवेदना सीधे सामाजिक सरोकारों से जुड़ती है। यह भारतीय समाज में सदियों से शोषित अछूत वर्ग की पीड़ा, आक्रोश, प्रतिरोध, विद्रोह और परिवर्तनकामी चेतना की अभिव्यक्ति का साहित्य है। जाहिरा तौर पर इस शोषण के केंद्र में वर्ण और जातिजनित भेदभाव और अत्याचार रहे हैं, जिसकी उत्कट अभिव्यक्ति दलित साहित्य में हुई है। किसी भी सरोकारवादी साहित्य के केंद्र में उसके विचार-दर्शन होते हैं। जिस प्रकार मार्क्सवादी साहित्य की चेतना मार्क्स के विचार-दर्शन से प्रेरित और प्रभावित रही, उसी प्रकार दलित साहित्य फुले अंबेडकरी चेतना और दर्शन से प्रभावित है।"[7]

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य का विकास कैसे हुआ और उसे किन- किन चिंतकों से वैचारिक ऊर्जा मिली इसके बारे में लिखते हैं- "वर्ण व्यवस्था से उपजी घोर अमानवीयता, स्वतंत्रता, समता-विरोधी, सामाजिक अलगाव की पक्षधर सोच को परिवर्तित कर बदलाव की प्रक्रिया को तेज़ करना दलित साहित्य की मूलभूत संवेदना है। पेरियार, गाँधी, लोहिया, अंबेडकर और ज्योतिबा फुले की जीवन-दृष्टि दलित साहित्य की ऊर्जा है।"[8]

हजारों वर्षों के गहरे अंधकारमय इतिहास में अपनी गुमशुदा अस्मिता की खोज और उसकी सही पहचान के लिए दलित आंदोलन सामने आया। ब्राह्मणवादी आलोचकों और इतिहासकारों ने दलित साहित्य को खंडित विमर्श बताकर उसकी उपेक्षा की, जबकि आज वही समाज और साहित्य में एक सशक्त विमर्श के रूप में उभरकर सामने आया है। इन मनुवादी और परंपरावादी इतिहासकारों तथा आलोचकों ने प्रतिरोध की परंपरा की उपेक्षा करते हुए इतिहास और आलोचना का अधूरा विकास किया। इन परंपरावादी साहित्यकारों, इतिहासकारों और आलोचकों ने जैन कवियों, सिद्धों-नाथों तथा निर्गुण धारा के संत कवियों के साथ भी यही व्यवहार किया। उनके साहित्य को साहित्य के रूप में स्वीकार नहीं किया गया। दलित साहित्य में दलित मुक्ति की बात है और इसके साथ ही स्त्री मुक्ति का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। आलोचक डॉ. चौथीराम यादव ने इन दोनों को साथ-साथ रखते हुए दलित और स्त्री मुक्ति के प्रश्न को मानव मुक्ति का प्रस्थान-बिंदु माना है। वे लिखते हैं- "दलित-मुक्ति और स्त्री-मुक्ति के प्रश्न ही मानव-मुक्ति के प्रस्थान-बिंदु हैं। अतः दलितों और स्त्रियों के अस्मिता आंदोलनों की उपेक्षा कर न तो किसी मानव-मुक्ति की कल्पना की जा सकती है और न ही मानव-मुक्ति के वृहत्तर जीवन-मूल्यों से जुड़े बिना अस्मिताओं के ये आंदोलन अपने व्यापक लक्ष्य को ही पा सकते हैं। डॉ. अम्बेडकर दलित समुदाय की सामाजिक मुक्ति के लिए प्रतिबद्ध थे और अबद्ध भी पर उनका अंतिम लक्ष्य तो मानव-मुक्ति ही था।"[9]

दलितों और स्त्रियों की मुक्ति तथा उन्हें स्वावलंबी और समर्थ बनाने के लिए शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षा के लिए विद्यालयों की सुदृढ़ व्यवस्था आवश्यक है, किंतु आज भी जहाँ दलितों के लिए विद्यालयों की व्यवस्था है, वहाँ की स्थिति अत्यंत दयनीय है। इसके कारण दलितों के साथ-साथ स्त्रियाँ भी गुणवत्तापूर्ण और

उच्च शिक्षा से आजीवन वंचित रह जाती हैं। इन समस्याओं की पहचान करते हुए रजत रानी मीनू लिखती हैं- "किसी भी स्त्री को स्वावलंबी और समर्थ बनाए बगैर उसकी मुक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। उसे समर्थ बनाने के लिए शिक्षा खास कर अंग्रेजी शिक्षा और रोजगारोन्मुख शिक्षा और खास कर गुणकारी शिक्षा देनी होगी। शिक्षा का महत्त्व खुद भी दलित स्त्रियों को समझना होगा जो शिक्षित नहीं हैं उन्हें यह बोध कराना होगा। मगर जितना जरूरी सवाल शिक्षा की चेतना से जुड़ा है उतना ही संसाधनों से भी जुड़ा है। दलित, पिछड़े वर्ग अभी भी गांव, गरीबी और अशिक्षा में फंसा है या रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहा है। गांव और शहर दोनों जगह उनके लिए स्कूल नदारद हैं। गांव में एक तो स्कूल नहीं हैं। यदि कहीं हैं तो वहां का जातीय और सामंती वातावरण दलित जातियों के प्रति सौहार्दपूर्ण नहीं है। इस कारण दलित लड़कियों की शिक्षा जाति भेदभाव की भेंट चढ़ जाती है।"[10]

दलितों एवं स्त्रियों की मुक्ति के लिए आंबेडकरवाद के साथ-साथ कार्ल मार्क्स के विचारों का भी साथ होना आवश्यक है। यद्यपि डॉ. आंबेडकर की मार्क्स के कुछ बिंदुओं पर असहमति थी, फिर भी उनके चिंतन में पर्याप्त समानताएँ थीं। दोनों ही पूँजीवाद के विरोधी थे। दलित, स्त्री, पिछड़े तथा अन्य सभी शोषित समुदायों को केवल ब्राह्मणवाद से ही नहीं, बल्कि पूँजीवाद से भी मुक्ति की आवश्यकता है। भारतीय समाज में व्यक्ति का शोषण ब्राह्मणवाद और पूँजीवाद—दोनों के संयुक्त प्रभाव से हुआ है और यह प्रक्रिया आज भी निरंतर जारी है। इस तथ्य की पहचान करते हुए डॉ. चौथीराम यादव लिखते हैं- "कतिपय बिंदुओं पर असहमति के बावजूद डॉ. अम्बेडकर और कार्ल मार्क्स के चिंतन में पर्याप्त समानता थी। दोनों पूंजीवाद के विरोधी थे, लेकिन डॉ. अम्बेडकर पूंजीवाद के साथ ब्राह्मणवाद को भी किसानों और मजदूरों का प्रबल शत्रु मानते थे। उनके अनुसार पूंजीवाद और ब्राह्मणवाद में चोली-दामन का संबंध है। दोनों शोषण-मुक्त समाज के पक्षधर थे, फर्क सिर्फ इतना भर था कि मार्क्स आर्थिक कारण को प्रमुखता देते थे तो डॉ. अम्बेडकर सामाजिक और आर्थिक दोनों कारणों को प्रमुख मानते थे। उनका तर्क था कि समाज में एक गरीब ब्राह्मण पूजा जाता है और धनाढ्य दलित नीच समझा जाता है।"[11]

चौथीराम यादव तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया को याद करते हैं। वे बताते हैं कि सहमति-असहमति के कतिपय बिंदुओं के बावजूद मुर्दहिया और ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन के बाद यह ऐसी पहली दलित आत्मकथा है, जिसका दलित और गैर-दलित दोनों वर्गों के लेखकों ने समान रूप से स्वागत किया है। वे मुर्दहिया को, उसके बहाने, गाँव धर्मपुर की दलित बस्ती के उन तमाम लोगों की आत्मकथा मानते हैं, जो अपने भीतर हजारों दुख-दर्द समेटे मुर्दहिया में दफन हो गए थे। लेखक ने मुर्दहिया के बहाने अपने गाँव की समस्या, अर्थात् विस्थापन की समस्या, को उठाया है। आज यह समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है। गाँव के किसान, मजदूर, आदिवासी और छोटे-छोटे दुकानदार जबरन विस्थापन की पीड़ा झेलने को विवश हैं। आलोचक चौथीराम यादव मुर्दहिया के बारे में लिखते हैं- "दलित आत्मकथाओं में वेदना और विद्रोह का स्वर काफी प्रबल होता है तथा विद्रोह की प्रेरणा डॉ. अम्बेडकर की वैचारिकी से मिलती है। इस संदर्भ में तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया किंचित भिन्न है। यहां वेदना तो भरपूर है लेकिन आक्रोश भरा विद्रोही स्वर बुद्ध की करुणा के संस्पर्श से शमित होकर मानवीय संवेदना का एक व्यापक प्ररिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करता है।"[12]

चौथीराम यादव बाबा नागार्जुन को याद करते हैं। बाबा नागार्जुन ने दलितों की स्थिति को केंद्रित रखते हुए 'हरिजन गाथा' नामक कविता लिखी। हरिजन गाथा में बाबा नागार्जुन ने दिखाया है कि किस तरह से समाज-व्यवस्था में दलित जीवन की विडंबनाएं, दलितों के प्रति घृणा की पराकाष्ठा तथा अस्पृश्यता जैसी सामाजिक समस्याएं किस प्रकार विद्यमान है। वे लिखते हैं- "निःसंदेह, जाति-भेद से जर्जर भारतीय समाज-व्यवस्था में दलित जीवन की विडंबनाओं पर केंद्रित यह कविता दलित चेतना का व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करती है; लेकिन इसको दलित विमर्श की वैचारिकी से जोड़कर देखना भारी भूल होगी। गरीबी दलित समुदाय की उतनी मारक समस्या नहीं है जितनी घृणा की सीमा तक फैली अस्पृश्यता की सामाजिक समस्या। इसलिए आर्थिक मुक्ति से पहले

सामाजिक मुक्ति, दलित आंदोलन की प्राथमिकता है। उनके अनुसार वर्ग-संघर्ष से पहले वर्ण-संघर्ष जरूरी है क्योंकि वर्ग भी अंतर्विरोधी से मुक्त नहीं है। आज भी समाज में एक गरीब ब्राह्मण पूजा जाता है और एक अमीर दलित अपमानित होता है।"[13]

चौथीराम यादव दलित कवि मलखान सिंह को भी याद करते हैं, जिन्होंने 'सुनो ब्राह्मण' कविता लिखी। वे इस कविता के महत्त्व को बताते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार एक ही कहानी लिखने के कारण चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने लोकप्रियता के सभी प्रतिमानों को पीछे छोड़ दिया, उसी प्रकार मलखान सिंह ने 'सुनो ब्राह्मण' लिखकर वही उपलब्धि हासिल कर ली। चौथीराम यादव इस प्रकार लिखते हैं- "मलखान सिंह के पाठकों की संख्या काफी बड़ी भी है, ठोस भी। वे जितने लोकप्रिय दलित पाठकों के बीच हैं, उतने ही लोकप्रिय गैर-दलित पाठकों के बीच भी। दलित कविताओं की विकास परंपरा में यदि किसी एक कविता को क्लासिक कविता माना जाए तो वह है- 'सुनो ब्राह्मण!' 'उसने कहा था' जैसी एक कहानी लिखने के कारण जिस प्रकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने लोकप्रियता के सारे प्रतिमानों को पीछे छोड़ दिया, वही मुकाम मलखान सिंह ने 'सुनो ब्राह्मण' लिखकर हासिल कर लिया है। दलित साहित्य में मलखान सिंह के इस कविता संग्रह को वही सम्मान प्राप्त है, जो ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन और तुलसीराम की मुर्दहिया को प्राप्त है।"[14]

निष्कर्ष : चौथीराम यादव दलित मुक्ति को मानव की मुकम्मल मुक्ति से जोड़कर देखते हैं और अपनी आलोचना-कृतियों में दलित विमर्श को मजबूती के साथ प्रस्तुत करते हैं। दलित विमर्श की प्रेरणा के लिए वे इतिहास में जाते हैं। वे बुद्ध से लेकर सिद्ध-नाथ परंपरा तथा आगे कबीर, रैदास, ज्योतिबा फुले और डॉ. आंबेडकर तक की परंपरा से इसे जोड़कर देखते हैं। भारतीय समाज में सदियों से दलितों का तमाम तरह से शोषण, उत्पीड़न और दमन किया गया है तथा उनके साथ किस-किस प्रकार का अमानवीय व्यवहार किया गया है, इसे वे उजागर करते हैं। उनके अनुसार, भारतीय समाज में दलितों की मुकम्मल मुक्ति के लिए ब्राह्मणवाद के साथ-साथ पूँजीवाद से भी मुक्त होना होगा।

अतः दलितों की मुक्ति के प्रश्न पर चौथीराम यादव महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हिन्दी साहित्य की आलोचना तथा दलित साहित्य में दलितों की समस्याओं को बारीकी से समझने, उनके शोषण के विभिन्न रूपों को जानने तथा उनसे मुक्ति की राह खोजने के लिए चौथीराम यादव अत्यंत महत्वपूर्ण आलोचक हैं। उनकी आलोचना-कृतियों को बार-बार पढ़ने, समझने तथा उनके बताए हुए रास्तों पर निरंतर चलने का प्रयास करना चाहिए। साथ ही, उनकी आलोचना को निरंतर पढ़ने और समझने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची :

1. बात कहूं मैं खरी खरी, संपादक- धर्मवीर यादव गगन, आशीष कुमार दीपांकर, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2022, पृष्ठ 117
2. वही,पृष्ठ 46
3. बजरंग बिहारी तिवारी, दलित साहित्य एक अंतर यात्रा, नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद, 2023, पृष्ठ 14
4. ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2022, पृष्ठ 13
5. वही, पृ.14-15
6. समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2021, संपादक-बलराम पृष्ठ 33
7. वही पृष्ठ 65
8. आजकल, दिसंबर 2000, पृष्ठ 7
9. चौथीराम यादव, लोकधर्मी साहित्य की दूसरी धारा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 32
10. दलित साहित्य प्रतिरोध अधिकार क्षमता, खंड-एक, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली 2020, पृष्ठ 167
11. चौथीराम यादव, लोकधर्मी साहित्य की दूसरी धारा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 32
12. वही, पृष्ठ 173
13. चौथीराम यादव, आधुनिकता का लोकपक्ष और साहित्य, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ 89
14. वही, पृष्ठ 190